नियमसार, गाथा ९४।

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।
तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं।।९४।।

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा।
होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा॥९४॥

टीका : यहाँ, व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता कही है... व्यवहारप्रतिक्रमण जो आता है, वह तो शुभराग है। सामायिक, प्रतिक्रमण, शुभराग आवे परन्तु उसका सफलपना कहा है। **(अर्थात् द्रव्यश्रुतात्मक प्रतिक्रमण सूत्र में वर्णित प्रतिक्रमण को सुनकर...)** वह द्रव्यप्रतिक्रमण सुनकर और उसका विकल्प आवे, उसे **(जानकर, सकल संयम की भावना करना...)** आहाहा! यह व्यवहार है, उसमें रुकना नहीं। सकल संयम, निर्विकल्प आनन्द शान्ति आत्मा, उसकी **(भावना करना, वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...)** नहीं तो अफलपना है। निश्चय अन्तर आत्मा, आनन्दस्वरूप आत्मा के अनुभव बिना अकेला व्यवहारप्रतिक्रमण निष्फल है। सफल है, पुण्यबन्ध का कारण है। संसार में भटकने का कारण है। आहाहा!

जितनी व्यवहार क्रिया कही—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, प्रतिक्रमण, सामायिक, वन्दन, प्रत्याख्यान, वे सब शुभभाव होते हैं परन्तु उस शुभभाव का फल कब आवे? उसे छोड़कर अन्तर शुद्ध में जाए। अन्तर आनन्दस्वरूप में जाए, उसे व्यवहारप्रतिक्रमण का सफलपना, निमित्तपना कहने में आता है। आहाहा! यह व्यवहारक्रियाकाण्ड जो कहलाता

है, उसका सफलपना कब कहलाये ? कि उसे छोड़कर अन्तर भावना आनन्दस्वरूप, शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द निर्विकल्प आनन्द में रमे, उसकी भावना करे, वह व्यवहार का फल अथवा तो उसे निमित्त कहा जाता है।

यदि अन्तर में निश्चयप्रतिक्रमण में न जाए, निश्चयप्रतिक्रमण आनन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्द के अनुभव में न जाए और व्यवहार प्रतिक्रमण दया, दान, विकल्प में रुके तो उसका फल संसार है। ऐसा काम है। सफलपना कहा, परन्तु वह व्यवहार छोड़कर अन्दर जाए तो व्यवहार निमित्त कहलाये। आहाहा! व्यवहार के जितने क्रियाकाण्ड किये जाते हैं—दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, वह सब शुभभाव सफल कब कहलाये ? कि उसे छोड़कर अन्तर निर्विकल्प आनन्द में जाए, शुद्धस्वरूप अनुभव में जाए, शुद्ध की भावना करे तो व्यवहार का फल आया कहलाये। फल अर्थात् उसे छोड़कर आना, वह करना है। व्यवहार करने का अकेला व्यवहार करने का नहीं। आहाहा!

यहाँ तो अभी व्यवहार का-निवृत्ति का ठिकाना नहीं है। पूरे दिन धन्धा-पानी, यह धन्धा, यह पाप, यह व्यापार, यह पैसा, यह दिया और यह लिया, यह खर्च किया, यह पैसा इतना कमाया, इतना माल आया, इतना नया आया, इतना पुराना था। आहाहा! अरे रे! यह तो पूरी जिन्दगी पाप है। अकेला पाप। धर्म तो नहीं, पुण्य भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि उस पाप से हटकर पुण्य में-शुभभाव में आया, व्यवहारप्रतिक्रमण में आया, अशुभ छोड़कर शुभ में, अशुभ को छोड़कर शुभ में आया तो भी उस शुभ का फल उसे छोड़कर निश्चय शुद्ध का अनुभव करे तो व्यवहार को व्यवहार कहा जाए और व्यवहार में ही अकेला रहे, अन्तर आत्मा के आनन्द के अनुभव में न जाए तो वह व्यवहार संसार का कारण, भटकने का कारण है। है ? आहाहा! पूरे दिन निवृत्ति (नहीं मिलती)। शुभभाव करने का समय नहीं मिलता, धन्धा-पानी के कारण। ऐसा होगा या नहीं ? ...हमारे भी दुकान में ऐसा था। सवेरे से शाम तक एक ही बात। गाँव में साधु आवे तो सामने देखे नहीं। रात्रि को आठ बजे आकर जाए। आठ बजे जाए। निवृत्त होकर घण्टे भर सुनने जाए। अरे रे! शुभभाव का भी अवसर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव का अवसर प्रतिक्रमण, सामायिक, प्रौषध और यह किया परन्तु वह शुभभाव है। उस शुभभाव को शुभभाव के फलरूप से इसे छोड़कर

निश्चय में जाए तो शुभ को शुभरूप से व्यवहाररूप से कहा जाए और शुभ को छोड़कर अन्दर में न जाए और शुभ में ही रहे तो संसार में भटकता रहे। आहाहा! ऐसा काम है। कठिन काम है। है ?

(व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...) है। द्रव्यश्रुत शास्त्र जो है, उसमें जो प्रतिक्रमण सूत्र का वर्णन किया हो, उस प्रतिक्रमण को सुनकर... (वह) विकल्प है, वह शुभराग है। **(जानकर, सकल संयम की भावना करना...)** अन्तरनिर्विकल्प आनन्दस्वरूप भगवान में सकल संयम। (प्रतिक्रमण का शुभविकल्प) वह तो व्यवहार क्रिया है, उसे छोड़कर अन्तर सकल संयम। निर्विकल्प वीतरागस्वरूप आत्मा की अन्तर में एकाग्रता करना, उसकी भावना करना, वह व्यवहार का फल है।

मुमुक्षु : व्यवहार से निश्चय हुआ तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय हुआ किस प्रकार ? व्यवहार है, उसे छोड़कर यदि यहाँ जाए तो उसको व्यवहार से व्यवहार कहा जाए। वहीं का वहीं रुके तो निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं, दोनों नहीं - ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया ? व्यवहार का सफलपना कब कहते हैं ? - कि व्यवहार का विकल्प आवे—प्रतिक्रमण का, सामायिक का, भगवान की स्तुति, भगवान की भक्ति, आदि का भाव आवे, परन्तु वह भाव शुभ है। उसे छोड़कर शुद्धस्वरूप में जाए, वह स्वरूप करना है। भावना वह करनी है तो उस शुभ को निमित्त कहने में आता है। निमित्त अर्थात् उसने कुछ किया नहीं है और उससे कुछ कराया नहीं है। आहाहा! है कोई ? सब व्यवहार का स्पष्टीकरण है न ?

पहले ऐसा कह गये थे कि व्यवहार है, वह घोर संसार का मूल है। वह पुण्यभाव और पापभाव दोनों, शुभ और अशुभभाव दोनों घोर संसार का मूल है और वह पुण्य और पाप दोनों जहर है। आहाहा! भगवान अन्दर अमृतस्वरूप है, वीतरागमूर्ति है, उसकी अन्दर भावना प्रगटे नहीं और उसका अनुभव न करे और मात्र इस क्रियाकाण्ड में, शुभराग में रुके, वह घोर संसार है। चार गति में-संसार में भटकनेवाला है। आहाहा! उसमें है न ?

(व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता—सार्थकता है...) कब ? कि **(सकल संयम की भावना करना वही...)** वही। सकल संयम अर्थात् पूर्ण निर्विकल्पदशा। अन्तर जरा भी व्यवहार का विकल्प नहीं। निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प वीतराग, निर्विकल्प आनन्द,

निर्विकल्प स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता, ऐसी वीतराग परिणति प्रगट करना, उसकी भावना करना, अर्थात् एकाग्रता करना, वह सफलपना है। **वही...** ऐसा कहा न? **(सकल संयम की भावना करना, वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता...)** है। तो ही व्यवहार -प्रतिक्रमण को व्यवहाररूप से कहा जाता है। नहीं तो व्यवहार भी नहीं कहलाता। आहाहा! इसमें क्या करना? कहो, देवीलालजी! पूरे दिन उसमें फँस गया। आहाहा!

अभी तो व्यवहार करने को निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन धन्धा-पानी, व्यापार में से निवृत्त हो तो छह-सात घण्टे सोवे, स्त्री-पुत्र को सम्हाले, प्रसन्न करे। शुभभाव का तो समय भी नहीं मिलता। आहाहा! उस प्राणी की तो क्या बात करना? वह तो घोर संसार में भटकनेवाला है। आहाहा! नरक और निगोद में परिभ्रमण करनेवाले हैं, भाई! आहाहा! यहाँ तो शुभभाव करे, शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे, बराबर प्रतिक्रमण करे, शाम-सवेरे सामायिक करे, उसकी बाहर की मानी हुई (करे)। णमो अरिहन्ताणं... प्रतिक्रमण करे, रात्रिभोजन त्याग करे, वह भाव राग है। उसे छोड़कर वीतरागी भावना करना, वही वीतरागी भावना करना, वही उसका फल है। वीतरागी भावना न करे तो व्यवहार, व्यवहार से (भी) व्यवहार नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सफलपने का अर्थ? व्यवहार से हुआ - ऐसा नहीं। सफलपने का अर्थ यह नहीं कि व्यवहार से निश्चय हुआ। व्यवहार का सफलपना कब कहलाता है? निमित्तरूप से उसे छोड़कर अन्दर संयमी निश्चय वीतरागी भावना रुके - एकाग्र हो, तब उसे निमित्तरूप से, व्यवहाररूप से कहा जाता है। आहाहा! लो, ऐसा समय कब मिले? स्त्री-पुत्र को डालना कहाँ? ....क्या करना? आहाहा! इसकी तो यहाँ बात ही नहीं। यहाँ तो उनसे निवृत्ति और शुभभाव करता है। समझ में आया?

कल एक आया था। खत्री-खत्री 'जसदण' का लड़का आया था। उसके पिता ने पुछवाया था, वृद्ध होंगे। पुछवाया था, हजार बार-लाख बार ॐ करते हैं, उसका फल क्या? कहा, लाख बार ॐ कर, करोड़ बार ॐ ॐ कर, वह शुभ है। वह धर्म-बर्म नहीं। लड़का आया था। जसदण का खत्री था। ....आया था। हम मेरे पिता को... दिखाया। उसमें दिगम्बर मुनि दिखते हैं - ऐसा बेचारे ने पूछा। कोई कल्पना में आ गया। दिगम्बर मुनि दिखते हैं... हैं दिगम्बर मुनि। ॐ करते-करते दिखते हैं। दिखते हैं, कल्पना हो। वह सब

शुभभाव है। सच्चे मुनि के दर्शन हों तो भी वह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। तीर्थंकर के दर्शन हों, वह भी कुछ धर्म नहीं। प्रतिमा के दर्शन, प्रतिमा की पूजा, भगवान का मन्दिर, देवदर्शन, वह कुछ धर्म नहीं है। वह तो शुभभाव है। आहाहा! उस शुभभाव का निमित्तपना तब सफल कहलाता है कि उसे छोड़कर अन्दर संयम अर्थात् वीतरागभाव से भावना भावे, वीतरागभाव प्रगट करे। उस रागभाव को छोड़कर वीतरागभाव प्रगट करे तो व्यवहार का निमित्तपना कहलाता है। ऐसा काम है, बापू! ....है। अभी तो व्यवहार से होता है, व्यवहार करो, यह करो, यह करो, प्रतिक्रमण, सामायिक करो, एक-दूसरे को मदद करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ, ऊँचे मन्दिर बनाओ (ऐसी बातें चलती हैं)।

मुमुक्षु : मन्दिर होवे तो साधु उतरे और लाभ होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ क्या होगा? यह शुभ है। साधु उतरे और सुनने का मिले, वह शुभ है। ऐसा कठिन काम है। आज नैरोबी से पत्र आया है। नैरोबी-नैरोबी, अफ्रीका। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया है न? पन्द्रह लाख दूसरे खर्च करनेवाले हैं। तीस लाख खर्च करनेवाले हैं। इससे अधिक खर्च करेंगे। वहाँ करोड़पति हैं। सात-आठ व्यक्ति तो करोड़पति, दूसरे सब बहुत पच्चीस-पचास, साठ लाखवाले हैं। एक भाई ने पूछा है। लक्ष्मीचन्दभाई नहीं आये थे? लक्ष्मीचन्दभाई, उन्होंने पूछा है, महाराज! आप यहाँ आओ तो हमारे घर में, घर में जीमने का रखूँगा या एक जगह रखूँगा? और चरण कराने का भाव है, उसका क्या? ऐसा पत्र आया है। माता-पिता करने में आपकी सलाह क्या है? भाई! उसमें हमारा क्या काम है? भगवान के माता-पिता बनाते हैं न? लोगों को उत्साह बहुत है। पैसेवाले हैं। साठ घर श्वेताम्बर के, (अब) सब दिगम्बर हो गये हैं। तीस वर्ष से, और सब पैसेवाले हैं। उन लोगों को मन्दिर का उत्साह बहुत है। बहुत उत्साह है। महाराज यहाँ आते हैं तो बहुत उत्साह से करना है। यह सब शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : अशुभ से तो बचे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ से बचा नहीं। निश्चय से तो अशुभ मिथ्यात्व होता है। अशुभ, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व से बचे, तब अशुभ से बचा कहलाये। आहाहा! ऐसा है। सूक्ष्म काम है, भाई!

अनन्त काल से भवभ्रमण कर रहा है। आहाहा! ऐसे भव किये हैं, सुने नहीं जाएँ।

उनके दुःख भोगे हैं। उस नरक के एक क्षण का दुःख, ऐसे-ऐसे तैंतीस-तैंतीस सागर अनन्त बार गया। एक क्षण में करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में न कहे जा सकें, ऐसे दुःख की पीड़ा वहाँ है, बापू! ऐसे भव अनन्त कर-करके मुश्किल से मनुष्यपना मिला। आहाहा! यह भव, भव का अभाव करने के लिए मिला है। भव के अभाव की बात के लिए है। यह भव और भव ऐसा का ऐसा रहे, वह तो अनादि से परिभ्रमण करता है। आहाहा! अरबोंपति व्यक्ति हो, सेठ हो, मरकर सूअर होता है। आहाहा! माँस-शराब आदि न खाता (पीता) होवे।

मुमुक्षु : आज तो आपने नरक में भेजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....कोई शुभभाव करे तो स्वर्ग में भी जाए परन्तु वह संसार है। वह संसार है। शुभभाव करके स्वर्ग में जाए, वह संसार है; वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! यह कहा न? द्रव्य चतुष्टय में? द्रव्य प्रतिक्रमण, द्रव्य सामायिक, द्रव्य प्रत्याख्यान बाहर से करते हैं न? अन्दर कहाँ भान है? अन्दर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध ज्ञानानन्द आनन्दमूर्ति प्रभु है। उसकी तो खबर नहीं होती। उससे ऊँची चीज़ इस जगत में कोई है ही नहीं। ऐसा आत्मा भगवान है, वीतराग है, परमात्मा है, परमेश्वर है, वह प्रत्येक आत्मा प्रभु है, भगवान! शरीर मन्दिर में विराजमान। विराजमान भगवान पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! ऐसा सुनने को मिले तो भी ध्यान कहाँ है? आहाहा! बहुत बार सुना है।

यहाँ यह कहते हैं, अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड शुभभाव करे, उसमें से हटकर यदि शुद्ध में न जाए, अन्तर की भावना जो वीतरागी भाव, उसमें न जाए तो यह सब व्यर्थ है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे लोगों को प्रसन्न रखे, ऐसा करो, ऐसा करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, करते-करते आगे होगा, समकित होगा और धर्म होगा।

मुमुक्षु : इसमें तो राग का कर्तापना आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान तो राग का कर्ता ही है। समाज को ठीक पड़े। समाज को आगे बढ़ा जा सके ऐसा नहीं। अभी शुभ में आ सके नहीं, उसे बेचारे को शुभ की बातें करे तो ठीक लगे। समाज प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। आहाहा! ऐसे तेरे जितने प्रतिक्रमण और सामायिक और व्यवहार, उन सबका फल बन्ध और बन्धन है। आहाहा! उसका सफलपना

तो तब कहलाये कि उससे छोड़कर वीतरागभाव में जाए तो। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। क्या हो?

जिनेश्वरदेव परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ का यह फरमान है। यह उनका हुकम है, यह उनकी आज्ञा है। तेरे व्यवहार के फल कब कहलायें? उन्हें छोड़कर अन्दर शुद्ध में जाए तो उसे व्यवहार कहा जाए। बाकी तो व्यवहार संसार है। आहाहा! है?

समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर... अब द्रव्य प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हैं। द्रव्य प्रतिक्रमण बनाया किसने? किन आचार्यों ने बनाया? कि **समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले...** गुणसमूह के धारण करनेवाले, ऐसे **निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप...** द्रव्य शास्त्र बनाये। उनमें **प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है,...** प्रतिक्रमण का वर्णन किया है। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय... मिच्छामी दुक्कडं। यह सब व्यवहार प्रतिक्रमण वर्णन किया है। आहाहा! सारासार का विचार करनेवाले ऐसे निर्यापक सच्चे सन्तों ने जो द्रव्य प्रतिक्रमण रचा है। है?

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है, तदनुसार जानकर... जैसा मुनियों ने द्रव्य प्रतिक्रमण कहा, वैसा उस प्रकार जानकर। व्यवहार भी जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जानकर। वीतराग ने कहे हुए व्यवहार से दूसरा, कम, अधिक, विपरीत नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में विराजते हैं, उन्होंने यह कहा है। आहाहा! वहाँ से ये कुन्दकुन्दाचार्य वाणी लाये हैं और यह वापस स्वयं अपने लिए बनाया है। यह शास्त्र स्वयं के लिए बनाया है। आहाहा!

तदनुसार जानकर जिननीति को अनुल्लंघता हुआ... अर्थात् क्या कहते हैं? व्यवहार प्रतिक्रमण है सही, आवे अवश्य। व्यवहारनीति है। 'जिन' की यह व्यवहारनीति है। व्यवहार यह जिन (जिनदेव) की नीति है। उसे **अनुल्लंघता हुआ...** उसे उल्लंघन किये बिना। आहाहा! **सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि...** ऐसे अन्दर व्यवहार के शुभभाव, प्रतिक्रमण आदि, सामायिक आदि के आवे, उन्हें **अनुल्लंघता हुआ...** उन्हें छोड़कर अशुभ में न जाए। उन्हें छोड़े नहीं, परन्तु **सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि सकल संयम की**

भावना करता है,... उस भाव में नहीं रुकते। प्रतिक्रमण रचा, रचा हुआ प्रतिक्रमण। रचा शास्त्रों में सन्तों ने, मुनियों ने, परन्तु वे महामुनि उसकी रचना के विकल्प में रुकते नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम है।

सकल संयम की भावना करता है, उस महामुनि को कि जो (महामुनि) बाह्य प्रपंच से विमुख है,... आहाहा! यह व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प है, वह प्रपंच है। आहाहा! अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा विराजता है। आहाहा! **बाह्य प्रपंच से विमुख है,...** जो विकल्प है, वह सब प्रपंच है। आहाहा! आता है, व्यवहार होता है, आचार्य ने भी व्यवहार रचा है - व्यवहारप्रतिक्रमण रचा है और तद्नुसार प्रतिक्रमण का विकल्प भी आता है, परन्तु वह विकल्प प्रपंच है, उसे छोड़कर अन्तर वीतरागभाव कर। आहाहा! यहाँ तो यह व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो... यह करते-करते निश्चय होगा। समाज को निवृत्ति नहीं मिलती, इसलिए यह बात बहुत अच्छी लगती है। उसमें प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। विपरीत प्ररूपणा है, वह तो मिथ्यात्व की प्ररूपणा है। वह तो मिथ्यादृष्टि की प्ररूपणा है।

यहाँ तो यह कहते हैं... आहाहा! **बाह्य प्रपंच से विमुख है,...** बीच में व्यवहार आवे अवश्य, परन्तु उससे विमुख होते हैं। आहाहा! उसमें रहते नहीं। व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है। व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारसामायिक, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारवन्दन, देव-गुरु-शास्त्र को वन्दन, यात्रा, भक्ति, वह सब शुभभाव है। वह स्वभाव की अपेक्षा से प्रपंच है। आहाहा! कठिन काम है।

बाह्य प्रपंच से विमुख है,... आहाहा! महामुनि ऐसे व्यवहार के विकल्प से भी विमुख है। अन्दर में निश्चय आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसमें रमणता में रमते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हैं। आहाहा! वह निश्चय प्रतिक्रमण है। तब उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। कठिन पड़े, क्या हो? लोगों को अभी व्यवहार की भी खबर नहीं है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जो प्रतिक्रमण रचा, वह प्रतिक्रमण है, ऐसा कहते हैं।

समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप... रचा। आहाहा! उनके रचे हुए प्रतिक्रमण। यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी के रचे हुए जो हैं, वह द्रव्यश्रुत

भी नहीं है, वह तो कल्पित रचित है। वे शास्त्र कल्पित हैं। आचार्यों के रचे हुए नहीं। सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा के रचे हुए नहीं। आहाहा! ऐसा अन्तर, बहुत अन्तर पड़ता है।

इसलिए यह कहा कि **समस्त आगम के सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है,...** विकल्प है और सूत्र रचा है। प्रतिक्रमण सूत्र रचा है। **तदनुसार जानकर...** आहाहा! जिस प्रकार प्रतिक्रमण कहा, तद्नुसार व्यवहार से जानकर, **जिननीति को अनुल्लंघता हुआ...** उस व्यवहार की नीति को छोड़े नहीं। छोड़कर अशुभ में न जाए। उसे छोड़कर शुद्ध में जाए। आहाहा! **जिननीति को अनुल्लंघता...** वह जिननीति है। लौकिक व्यवहार प्रतिक्रमण आदि वह 'जिन' की नीति है। उसे **अनुल्लंघता हुआ जो सुन्दरचारित्रमूर्ति...** आहाहा! सुन्दरचारित्रमूर्ति। आत्मा के आनन्द में रमणता। चारित्र अर्थात् सुन्दर आनन्द में रमणता। चारित्र अर्थात् वीतरागस्वरूप में रमणता, वह चारित्र है। आहाहा! चारित्र की यह व्याख्या है। वस्त्र छोड़ दिये और पंच महाव्रत लिए, इसलिए चारित्र हो गया – ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : परीषह तो सहन करना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परीषह सहन तो अनन्त बार किये हैं। अभव्य और भव्य दोनों ने। उसमें क्या हुआ? अन्दर ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हुए बिना जो कुछ परीषह सहन किये, उतना शुभभाव होता है। संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....होवे तो .....नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....जाए तो भी संसार है। नग्नपना, वह संसार है। शरीर, वह संसार है। अन्दर शुभभाव हो, वह संसार है, कहो। आहाहा! वस्त्र रखना, वह तो संसार है परन्तु वस्त्र छोड़ना, नग्नपना (अंगीकार करना), वह संसार है और अन्दर शुभभाव होना, वह संसार है, घोर संसार है। शुभराग, वह घोर संसार है। आहाहा! कठिन काम, भाई! जैनधर्म सुना नहीं। लोगों ने जैनधर्म क्या है (वह सुना नहीं)।

मुमुक्षु : ऐसी कठोर बात अन्यत्र कहीं लिखी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न? ४५ वर्ष से यह चलता है। यहाँ ४५ वर्ष होने को आये। ४५ वर्ष से तो यह बात चलती है। ४५ दूसरे हुए।

मुमुक्षु : हम उस समय तैयार नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार नहीं थे, परन्तु ४५ वर्षों से चलता तो है न? ४५ दूसरे और ४५ दूसरे। शरीर को ९० वर्ष हुए। शरीर को। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! यह कोई पहला-पहला नहीं चलता, बहुत बार पढ़ा गया है। नये लोग हों, उन्हें लगे। नये आये हों।

मुमुक्षु : पुराने हों, उन्हें भी नया लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने हों, उन्हें सुना हुआ भूल गये हों तो नया लगे। सुनकर भूल गया हो तो नया लगे। आहाहा!

अमृत जैसी वाणी है। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा अरिहन्तदेव की यह वाणी है। गणधर और इन्द्रों के समक्ष में प्रभु ऐसा कहते थे कि हे जीवों! हमारे सन्तों ने, आचार्यों ने भी जो द्रव्यप्रतिक्रमण की रचना की, सच्चे सन्तों ने यह रचना की, उसे जानकर भी, वहाँ से छोड़कर अन्दर वीतरागता में जा। आहाहा! वहाँ न रुक। आता है, विकल्प आता अवश्य है, परन्तु वहाँ रुकना नहीं। राग से रहित वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर चैतन्य हीरा है। उसमें अनन्त गुण के मणिरत्न भरे हैं। अनन्त गुणमणिरत्न से भरपूर भगवान है। आहाहा! कैसे जँचे? दो बीड़ी पीवे, वहाँ तलप चढ़ जाए। सवेरे प्याला चाय न पीवे पाव सेर, सवा सेर (न पीवे) तो मस्तिष्क चढ़ जाए। आहाहा! सुनने में मस्तिष्क ठीक रहे। चाय पीये बिना आये होंगे तो मस्तिष्क ठीक रहे नहीं। आहाहा!! ऐसे अपलक्षण। उसे यह बताना कि शुभभाव भी बन्ध का कारण है, वह घोर संसार। आहाहा! मार्ग ऐसा है, प्रभु! अभी तो सुनना मुश्किल पड़े। ऐसी प्ररूपणा सब चली है (कि) व्यवहार करो... यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... करो... करो... और करो... छोड़ो, छोड़ो और छोड़ो।

निहालचन्दभाई ने तो द्रव्यदृष्टि प्रकाश में कहा है - करना, करना, यह करना, वह मरना है। राग को करना, अरे! दया, दान और व्रत का राग करूँ, वहाँ शान्ति का मरना है। आत्मा की शान्ति वहाँ सुलगती-जलती है। आहाहा! कठिन बात है। एकान्त लगता है। अज्ञानी को अध्यात्म का एकान्त लगे, ऐसा है। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य क्या कहते हैं? - कि **बाह्य प्रपंच से विमुख है,...** आहाहा! अन्तर

में स्वरूप की रमणता में रम रहे हैं। सन्त तो यह प्रतिक्रमण कह रहे हैं। आहाहा! वाणी का नहीं, विकल्प का प्रतिक्रमण नहीं; वीतराग निर्विकल्पभाव का प्रतिक्रमण कर रहे हैं। आहाहा! **पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित देहमात्र जिसे परिग्रह है...** मुनि को तो एक शरीरमात्र होता है, दूसरा (कुछ) होता नहीं। वस्त्र का टुकड़ा रखकर भी मुनि माने, वह निगोद में जाता है, ऐसा सिद्धान्त पाठ है। सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ में यह पाठ है। एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि कहे, मुनि माने, मुनि मनावे और माननेवाले को भला जाने, वे सब निगोदगामी हैं। लहसुन में और प्याज में जानेवाले हैं। आहाहा! ऐसे कठिन वचन हैं। अष्टपाहुड़ में है। अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ में है।

सवेरे कहा नहीं? प्रवचनसार। पुण्य और पाप में दोनों में अन्तर मानेगा, वह घोर संसार में भटकेगा। शुभभाव और अशुभभाव; दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव और हिंसा, झूठ का अशुभभाव, इन दो में अन्तर मानेगा कि यह शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, इन दों की विशेषता मानेगा... ये दोनों एक ही जाति है, (फिर भी) विशेष मानेगा, वह घोर '**हिडंदि**'। मिथ्यादृष्टि घोर संसार में, निगोद में, नरक में भटकेगा। आहाहा! कठिन काम।

मुमुक्षु : कठोर सजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर सजा नहीं। इसमें नव तत्त्व की भूल है। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने, वह (तत्त्व की भूल है)। अभी सब साथ में गाड़ी... क्या कहलाता है? ट्रक। अरे रे! उसके लिए आहार बनावे। उसके लिए आहार बनाकर चौका करे और दे, (उसे लेनेवाला) वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। भाव (लिंग) तो नहीं, द्रव्यलिंग भी नहीं है। उसे मुनिपना माने, मनावे... भगवान तो ऐसा कहते हैं कि निगोद में जाएगा। आहाहा! सूत्रपाहुड़ में है। कठिन काम है, भाई! वीतरागमार्ग अपूर्व है। अभी तो बहुत फेरफार कर डाला है। सुननेवाले शिथिल, विपरीत दृष्टिवाले सुनानेवाले ऐसे मिले, इसलिए हाँ, यह हाँ की। व्यवहार से ऐसा होता है, उसे करते-करते होता है। उसमें हाँ करनेवाले मिले। यहाँ ना करते हैं। व्यवहार करते-करते (धर्म) नहीं होता। व्यवहार छोड़कर होता है। आहाहा! कठिन काम है।

मुमुक्षु : ऐसे तो व्यवहारधर्म का सफलपना आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....करते हैं न! इसमें यह कहाँ आया? उसे (व्यवहार को)

छोड़कर अन्दर में जाए, तब व्यवहार को निमित्तरूप से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं, तो व्यवहार, व्यवहाररूप से सफल है। उसे छोड़कर निश्चय में जाए तो व्यवहार को व्यवहाररूप से सफल है – ऐसा आया। उसे छोड़कर व्यवहार में खड़ा रहे तो नीचे निगोद में जाएगा। आहाहा! ऐसा कठिन काम।

मुमुक्षु : अभी तो स्वर्ग में जाए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी क्या स्वर्ग में जाए? एकाध कदाचित् कोई शुभभाव होवे और एकाध भव जाए, उस भव की स्थिति कितनी? भविष्य में अनन्त काल रहना है। आत्मा अनन्त काल रहनेवाला है। अनादि का है, अनन्त काल रहनेवाला है। अनन्त-अनन्त की आदि क्या? उसमें एकाध भव देव का मिले, फिर जाएगा पशु में, वहाँ से मरकर फिर निगोद में (जाएगा)। आहाहा! कठिन काम है, बापू!

पंचेन्द्रिय के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है... मुनि इन्हें कहते हैं। एक शरीरमात्र है; दूसरा कुछ होता नहीं। आहाहा! वह द्रव्य प्रतिक्रमण में से निकलकर भाव प्रतिक्रमण में जाता है, ऐसा कहना है। **और परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है,...** कैसे हैं मुनि? परम गुरु परमात्मा के **चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है,...** आहाहा! **उसे—तब (उस काल) प्रतिक्रमण है।** आहाहा! भाववीतरागता है और विकल्प उठता है, वे **परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त है,...** आहाहा! वह भी पुण्यबन्ध का कारण है।

श्लोक-१२५-१२६

[अब इस परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं]:—

(इन्द्रवज्रा)

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता-
मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम्।
समस्त-चारित्र-निकेतनं स्यात्,
तस्मै नमः संयम-धारिणेऽस्मै ।।१२५।।

(वसंततिलका)

यस्य प्रतिक्रमण-मेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकल-संयम-भूषणाय,
श्रीवीरनन्दि-मुनि-नामधराय नित्यम् ।।१२६।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ परमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः पञ्चमः श्रुतस्कन्धः।

(हरिगीतिका)

निर्यापकों की व्याख्या युत सदा सुनकर के कथन।
हो चित्त चारित्रधाम जिसका, संयमी को हो नमन॥१२५॥

जिनको सदा ही प्रतिक्रमण अणुमात्र नहिं अप्रतिक्रमण।
भूषित सकल संयम मुनि उन वीरनन्दि को नमन॥१२६॥

[श्लोकार्थः] निर्यापक आचार्यों की निरुक्ति (-व्याख्या)सहित (प्रतिक्रमणादि सम्बन्धी) कथन सदा सुनकर जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है, ऐसे उस संयमधारी को नमस्कार हो॥१२५॥

[श्लोकार्थः] मुमुक्षु ऐसे जिन्हें (-मोक्षार्थी ऐसे जिन वीरनन्दि मुनि को) सदा

प्रतिक्रमण ही है और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण नहीं है, उन सकलसंयमरूपी भूषण के धारण करनेवाले श्री वीरनन्दि नाम के मुनि को नित्य नमस्कार हो ॥१२६॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार नाम का पाँचवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-१२५-१२६ पर प्रवचन

[अब इस परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं]:—

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता-
मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम्।
समस्त-चारित्र-निकेतनं स्यात्,
तस्मै नमः संयम-धारिणेऽस्मै ।।१२५।।

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि आनन्द में आ गये हैं। आनन्द में आकर... आहाहा! पंचम काल के सन्त हैं। पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि ऐसी बातें चौथे काल में होती है। ये तो पंचम काल के साधु हैं, अभी नौ सौ वर्ष पहले हुए हैं और पंचम काल के श्रोता को कहते हैं, प्रभु! तू आत्मा है न! आत्मा को काल-फाल लागू नहीं पड़ता। प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। तू अन्दर हीरा, अनन्त गुण के मणिरत्न से भरपूर, ऐसे हीरा को कोई काल बाधक नहीं है। आहाहा! वह प्रभु स्वयं कभी शुभरागरूप हुआ नहीं। आहाहा! वह प्रभु, दया-दान के विकल्परूप हुआ नहीं। ऐसा आत्मा अन्दर है, भगवान है, परमेश्वर है, प्रभु है, वीतराग है, परमेश्वर है। आहाहा! ऐसे आत्मा को.. आहाहा!

निर्यापक कहा न? **निर्यापक आचार्यों की निरुक्ति...** जो आचार्यों ने प्रतिक्रमण... उनकी **(-व्याख्या) सहित (प्रतिक्रमणादि...)** प्रतिक्रमणादि। प्रतिक्रमण की, सामायिक

की, व्यवहार की सब... है न ? व्यवहार होता है। **कथन सदा सुनकर...** ऐसे आचार्यों का कथन सुनकर करना क्या ? **जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है,...** आहाहा ! भगवान आत्मा चारित्रधाम है। स्वयं ज्योतिसुखधाम। श्रीमद् में आता है न ? स्वयं ज्योतिसुखधाम... चैतन्य ज्योति... सुखधाम, वह आनन्द का फल है। अन्तर आनन्द पकता है। आनन्द के अंकुर फूटते हैं, ऐसा यह भगवान है। इसमें दु:ख और पुण्य और पाप फूटे, ऐसा यह भगवान आत्मा नहीं है। आहाहा ! कब जँचे ? यहाँ उड़द की दाल ठीक से सीझी न हो तो ढींचणीयुं उछले। आज ऐसी किसने बनायी है ? अब उसे ऐसा बैठाना... आहाहा ! बापू ! यह बैठने से ही छुटकारा है।

भाई ! अनन्त काल से दु:खी है। अनन्त काल से परिभ्रमण करता है, भाई ! अनन्त भव में इसे कहीं शान्ति नहीं मिली। मिथ्यात्व के भाव में भटकते हुए महादु:खों से पीड़ित हो गया है। जैसे घाणी में तिल पिलता है, वैसे पिल रहा है परन्तु इसे भान नहीं है कि मैं दु:खी हूँ या सुखी हूँ। कुछ पाँच-पच्चीस लाख रुपये मिले, लड़के अच्छे हुए तो हम सुखी हैं, ऐसा अज्ञानी-मूढ़ मानता है। आहाहा ! हम दु:खी हैं, बापू ! आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त दु:खी हैं, ऐसा मान तो अन्दर आनन्द में जाया जाएगा। सुख तो आत्मा में है, सुख कहीं बाहर में नहीं है। आहाहा !

जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन... आहाहा ! व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार सामायिक आदि सुनकर, ऐसा विकल्प आया परन्तु तो भी उससे हटकर और **समस्त चारित्र का निकेतन...** चित्त। निर्मल वीतरागभाव में जिसका चित्त चिपट गया है। आहाहा ! वीतरागमूर्ति चैतन्य प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है, जिसमें अतीन्द्रिय शान्ति भरपूर भरी है। ऐसा यह भगवान आत्मा... आहाहा ! उसमें **चारित्र का निकेतन...** स्वरूप में रमणता का वह धाम है। स्वरूप में रमणता, यह उसका धाम है, यह उसका स्थान है, यह उसका क्षेत्र है। आहाहा !

समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है,... यह सुनकर अन्दर जाता है, वह समस्त चारित्र की शान्ति को प्राप्त करता है। **ऐसे उस संयमधारी को...** जो ऐसा संयमधारी है... आहाहा ! ये पंचम काल के मुनि, पंचम काल के शिष्यों को ऐसा समझाते हैं। ऐसा नहीं कि यह पंचम काल है, इसलिए यह बात नहीं होती। बापू ! अवसर-मौका मिला है,

यह अवसर यदि चला गया तो फिर से मनुष्यपना कब मिलेगा? आहाहा! यह जानकर मनुष्य को सुनाते हैं।

इस संयमधारी को... ऐसे अन्तर में रमणता करता है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य के घर में, आनन्द में रमणता करे, ऐसा जो संयम। आहाहा! ऐसे **संयमधारी को नमस्कार हो।** स्वयं आनन्द में आ गये हैं। ऐसे संयमधारी को नमस्कार करते हैं। आहाहा! स्वयं संयमधारी हैं। संयम परन्तु यह। अन्तर आनन्दस्वरूप में रमणता करे, वह संयम है। इन्द्रियों का दमन करके बाहर के विषयों को भोगे नहीं, इसलिए इन्द्रियदमन और संयम हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्तर में संयमधारी को संयम का धाम बनता है। **उस संयमधारी को नमस्कार हो।** टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव उसे नमस्कार करते हैं। इतने प्रमोद में आ गये हैं। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)